दादा धर्माधिकारी के सामाजिक चिंतन की गाँधीय दृष्टि से समीक्षा

डॉ. माईकल
एम. ए., पी.–एच. डी.
स्नातकोत्तर, गाँधी विचार विभाग
तिलका माँझी भागलपुर,विष्वविद्यालय
भागलपुर, बिहार
Email :drmaikalbh@gmail.com

सारांश

गाँधी के बाद भारत में जिन विचारों ने गाँधी की चिंतनधारा को प्रस्फुटित एवं पल्लवित करने का प्रयास किया है, उनमें आचार्य विनोबा और दादा धर्माधिकारी का स्थान सबसे प्रमुख है। वस्तुतः इन दोनों चिंतकों ने ही गाँधीय चिंतन को व्यवस्थित एवं व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया है, क्योंकि विचार और संघर्ष– दोनों में उनका योगदान रहा है। दादा धर्माधिकारी गाँधी के निष्ठावान अनुयायी एवं गाँधीय चिंतन परम्परा के प्रमुख व्याख्याकार रहे हैं। उनके चिंतन और विचारों का देश के बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों एवं विचारों के लिए विशेष महत्व रहा है। उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों ने संघर्श करने के लिए तथा नये दृष्टिकोण से समस्याओं को सुलझाने के लिए उनसे प्रेरणा ग्रहण की और देश के आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विकास की योजना को कार्यान्वित करने के सिलसिले में उनके विचारों, सुझावों एवं सूक्तियों को अनुसरण करने का प्रयास किया। दादा द्रष्टा पुरुष थे। भविष्य के गर्भ में छिपे आगत की आहट मानों उन्हें सुनायी दे जाती थी।

Reference to this paper
should be made as follows:

Received: 04.08.2019
Approved: 24.09.2019

डॉ. माईकल

दादा धर्माधिकारी के सामाजिक चिंतन की गाँधीय दृष्टि से समीक्षा

RJPP 2019,
Vol. XVII, No. 2,
pp.46-53
Article No. 7

Online available at :
http://
rjpp.anubooks.com/

प्रस्तावना

दादा ने कहा था कि हर मनुष्य अपने में 'यूनिक',अपूर्व होता है, अद्वितीय होता है। गाँधी अपने में अद्वितीय था। जवाहरलाल अपने में अद्वितीय था। फिर भी इन दोनों के जीवन में एक अनुबंध था।[1] ठीक उसी प्रकार कहा जा सकता है कि दादा का व्यक्तित्व भी 'यूनिक' था फिर भी महात्मा गांधी के जीवन के साथ उसका अनुबंध था। दादा के लेखन में, भाषणों में तथा विचारों में कलाकार की सौंदर्य–दृष्टि, साहित्यिक की प्रतिभा, कल्पक और शास्त्रज्ञ की स्पष्टता का दर्शन होता था। अति क्लिष्ट संकल्पनाओं की अभिव्यक्ति दादा सहज–सुलभ शैली में करते थे। उत्पादन में वर्गभेद करते हुए दादा ने प्रतिपादित किया कि केवल मुनाफे के लिए उत्पादन करने का मतलब है पूंजीवादय केवल अध्ययन नहीं किया था, अपितु उन विचारों के अनुसार अपने जीवन में आचरण किया और इसीलिए गाँधीवाद का सही तत्त्व– दर्शन उन्होंने प्रभावपूर्ण ढंग से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया।[2] दादा ने स्वयं कहा कि, "मै बहुत श्रद्दापूर्वक महात्मा गाँधी को इसलिए प्रणाम नहीं करता कि भारत की स्वतंत्रा एक विशेष अर्थ में उनकी दें है। लेकिन मै उनको इसलिए प्रणाम करता हूँ कि आगे जब जीवन लुप्त–सा होता हुआ दिखाई दे रहा है और जबकि प्रलयकाल के चिन्ह दिखाई दे रहे हैं, वह अपनी जीवन– निष्ठा और मानव– निष्ठा को लेकर हमारे दिलों में आस्तिकता का भाव पैदा कर रहा है।[3]

गाँधी जी तरह दादा धरमाधिकारी भी समाज और सभ्यता को धर्म पर आधारित देखना चाहते थे। जिस सत्य के आधार पर व्यक्ति और समाज के बीच सुख और समन्वय को स्पष्ट देखा जा सके। दादा धर्माधिकारी के अनुसार वैसा समाज सनातन धर्म पर आधारित होगा। प्रत्येक युग में उसके रूप अलग हो सकते हैं, लेकिन मौलिक धारा एक ही रहेगी। कार्लमार्क्स कि तरह दादा धर्माधिकारी अपने धर्म को काल में बांधकर नहीं रखना चाहते हैं। उनका विचार है कि काल से प्रभावित दर्शन या तो भूत की गरिमा गाता है या भविष्य को व्यापक रूप में दिखलाना चाहता है और उनकी राजनीति यथास्थितिवाद को कायम रखने या भूत के स्वर्ण युग की प्राप्ति करने या गौरवमय भविष्य की कल्पना की ओर अभिमुख रहता है जो कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। अपने साध्य की प्राप्ति के लिए वे असीमित हिंसा का सहारा लेते हैं।[4] दादा धर्माधिकारी गाँधी के सत्य और अहिंसा के दूरगामी प्रभाव को स्वीकार करते हुए तथा इसकी विश्व–व्यापकता के बारे में दृढ़ मत रखते हुए कहते हैं– विश्व आज जिन समस्याओं से जूझ रहा है, वे सब गाँधी के आगमन के बाद ही विष्व के रंगमंच पर उपस्थित नहीं हुई है। वे समस्याएं पहले भी थी, लेकिन आज वे दूसरे रूप में आयी हैं। समस्या का स्वरूप व्यापक रूप से परिवर्तित हो गया है।[5]

दादा सर्वोदयी समाज रचना के लिए प्रतिबद्ध सिपाही की तरह प्रयत्नशील रहे। वे सर्वोदय के सबसे समर्थ आचार्य एवं भाष्यकार थे।[6] सर्वोदय दादा धर्माधिकारी की व्याख्या में, मूल्यों की पुर्नस्थापना करना चाहता है, ताकि उन बाधाओं को दूर किया जा सके जिससे मनुष्य का नैतिक पुनरुद्धार संभव हो।[7] आज तो ऐसी स्थिति है कि जिन्हें हक प्रदान करने के लिए या जिनके संरक्षण के लिए कानून बनाये जाए हैं, वे उनके स्तर पर कभी पहुँचते ही नहीं। स्थापित का यह प्रयत्न रहता है कि उन्हें इसका पर्याप्त ज्ञान कभी नहीं मिलना चाहिए। उनका अज्ञान

ही कुछ लोगों की कमाई का जरिया है। प्रस्थापित या निहित स्वार्थ की पूर्ति के लिए सामान्य जनों का कानून विषयक अज्ञान बना रहे, ऐसी ही योजन बनायी जाती है।[8] दादा धर्माधिकारी भारतीय समाज को मनुष्य के आधार पर संगठित करना चाहते थे। वे भारतीय समाज की प्रमुख समस्या को रेखांकित करते हुए कहते हैं " इस देश का सबसे बड़ा मर्ज जातीयता है। यह मर्ज मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि और दूसरी जमातों की अपेक्षा हिन्दुओं में विशेष रूप से है। विशेष उत्कट रूप में है, अधिक संकीर्ण रूप में भी है और उग्र रूप में भी है। मैं तो यहाँ तक कहने के लिए तैयार हूँ कि जातीयता का अगर ठेका किसी ने लिया है, जातीयता को संसार में किसी ने दाखिल किया है तो वह हमारा पाप है। इस दोष के भागी हम लोग हैं, जो हिन्दू कहलाते हैं।[9]

दादा भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता की भावना को राष्ट्रनिर्माण के लिए बाधक बताते हुए कहते हैं कि, "मनुष्य को मनुष्य से दूर ले जानेवाली अस्पृश्यता, चाहे स्वच्छता को भले ही बढ़ाती हो, पवित्रता को नष्ट करती है। स्वच्छता शरीर की स्थिति है, पवित्रता हृदय का गुण है। जो मनुष्य को मनुष्य के नजदीक ले जाती है, वही भावना पवित्र है, मंगलकारक है।[10] दादा हिन्दू धर्म के समक्ष उत्पन्न संकटों की तरफ इशारा कराते हुए कहते हैं कि, "वास्तविकता यह है कि 'हिन्दू' नाम से जाना जाने वाला व्यक्ति या धर्म जैसी कोई चीज अस्तित्व में है ही नहीं।[11] हिन्दू समाज नाम से जो जन–समूह पहचाना जाता है, उसमें ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, तेली है, माली है, कुर्मी है, कायस्थ है आदि। ये सब व्यक्ति और जातियां हैं, हिन्दू नाम से कोई व्यक्ति या जाति नहीं है। मुसलमान व्यक्ति भी है, समाज भी है और सम्प्रदाय भी है। हिन्दू और इस्लामी समाजों की रचना में यह मूलभूत अंतर है।[12] विज्ञान की दृष्टि से समस्त मानव जाति का खून सम दृसमान होने के बावजूद चमड़ी और भाशा की बुनियादी पर फिरकापरस्ती कायम रही है।[13] धर्म, भाषा, जाति, लिंग–भेद हमारे लोकतन्त्र की प्राप्ति में रुकावट बन रहे हैं।[14]

दादा धर्माधिकारी वर्ण– व्यवस्था के प्रश्न पर गांधीजी से अलग विचार रखते हैं। वे एक ऐसा समाज बनाना चाहते है। जो सामंजस्य प्रधान हो,न कि कर्म प्रधान। वैसे समाज में कोई उपनिवेश नहीं बनेगा। छोटे–छ्ते गाँव में भी मुहल्ले बन जाते हैं, वह नहीं बनेगा और उस वर्ण–व्यवस्था के चलते गाँव विभक्त हो जाता है तथा उसमें चरवाहे, माली, तेली, चमार, ब्राह्मण आदि के मुहल्ले बन जाते हैं।[15] दादा धर्माधिकारी वर्ण व्यवस्था को तिलांजलि देते हैं, जबकि गांधी जी ने जीवन के अधिकांश हिस्सों में वर्ण–व्यवस्था का समर्थन किया तथा बाद में उनकी इस धारणा में कुछ परिवर्तन हुए, परंतु दादा धर्माधिकारी तार्किक निष्कर्ष पर पहुँचकर वर्णाश्रम का समूल बहिष्कार करते हैं। आदर्शवादी गांधीवादी चिंतन को विकसित करते हुए तार्किक उपसंहार के रूप में गांधीवादी सामाजिक व्यवस्था का ढांचा खड़ा करते हैं।[16] दादा मानते हैं कि गांधीजी का झाडू (क्रांति का प्रतीक) जाति–प्रथा को खत्म कर सामाजिक असंतुलन और अस्पृश्यता को मिटाने का एक रचनात्मक कार्यक्रम था।[17] गांधीजी मानते हैं कि जो राजकारण सार्वभौम नैतिकता और धार्मिक से परहेज करता है वह सामाजिक जीवन की उन्नति में बाधक सिद्ध होगा और जो धर्म या नीति व्यवहार में नहीं चल सकती वह किसी काम की नहीं। वे सिर्फ इन दोनों का सामंजस्य ही नहीं बल्कि समुच्चय सिद्ध करना चाहते हैं। दादा कहते हैं कि इसलिए गांधीजी की राजनीति

और अर्थनीति अपूर्व है।[18]

दादा बताते हैं कि धर्म तो एक ही है और वह सार्वदेशिक, सार्वत्रिक तथा सार्वजनिक है। धर्म का उद्देश्य है धारण करना मनुश्यों को एक–दूसरे के साथ सम्बद्ध कर उनका एकत्र धारण करना, यही मनुष्य– समाज में ईश्वरीय प्रेम साक्षात्कार है। यही इशू का 'ईश्वरीय राज्य' है गाँधी का 'राम–राज्य' है और अदर्शवादियों का 'आदर्श– समाज' है। जो मनुष्य को संयुक्त करता है वह धर्म है, जो विभक्त करता है वह अधर्म है। धर्म 'योग' का (जोड़ने का) शासत्र और कथा है, न कि 'वियोग' का (तोड़ने का) शास्त्र और कला। 'समत्व' कि विद्या और 'संयोग' की कला का ही नाम धर्म है। वह हमें भेद से अभेद की ओर, विग्रह से संधि की ओर और द्वेष से प्रेम की ओर ले जाता है।[19] दादा वर्तमान राजनीति को अशुद्ध करार देते हुए कहते हैं कि विशुद्ध और व्यापक लोकतन्त्र के स्वरूप–लक्षण के द्योतक चार अर्थपूर्व शब्द गाँधी ने हम को दिये हैं, 1. सर्वधर्मसमानत्व, 2. स्पर्शभावना, 3. शरीरश्रम और 4. दरिद्रनरायण।

दादा धर्माधिकारी समाज की सभी प्रतिष्ठित संकीर्ण सत्ताओं का अन्तकरना चाहते हैं। वे कहते हैं कि वर्ग–सत्ता के साथ–साथ जाति का भी अन्त होना चाहिए। धर्माश्रित गौरव के साथ– साथ जन्माश्रितगौरव का भी अन्त भी तुरन्त होना चाहिए, वरना मानवता की कुशल नहीं। मानवता को बचाने के लिए यह जरूरी है कि अस्पृश्यता की भावना समाज में कहीं भी और किसी भी रूप में न रहे।[20] दादा कहते हैं "हम अपने देश को सुन्दर देखना चाहते हैं, हम अपने देश को सुशोभित देखना चाहते हैं, हम अपने देश को भव्य देखना चाहते हैं। लेकिन यह सब सुन्दरता भव्यता ताजमहल की सुन्दरता मन्दिर की हो, या मस्जिद की हो, शिरीन की हो, सेपुलकर की न हो। ताजमहल तो एक मकबरा है उसमें दो कब्रें हैं ताजमहल दुनिया की सबसे सुन्दर इमारत मानी जाती है।[21] हमारे यहाँ के महान कवि और द्रष्टा रवि ठाकुर ने इस देश को मानवता का महासमुन्द्र कहा है। हमारा देश ऐसा जहां भिन्न–भिन्न संस्कृतियों का आह्वान किया जाएगा, भिन्न– भिन्न धर्मों का स्वागत होगा, भिन्न–भिन्न जातियों का सत्कार होगा और सब अपना–अपना पानी इस महासागर में ला देंगे, उसमें गोदावरि, गंगा, कावेरी का हिओ पानी नहीं, बल्कि नील, बोल्गा, नाइल, टेम्स, मिसिसिपी, आमेजन आदि संसार की सभी नदियों का पानी होगा और उस पानी से हम अपनी भारत माता का अभिषेक करेंगे।[22]

दादा एक ऐसे हिंदुस्तान की कल्पना कराते हुए कहते हैं कि हिन्द गणराज्य सब धर्मों का, सब जमातों का, सब जातियों का, यानि जाति–जमात–वर्ण–धर्म–निरपेक्ष श्रमजीवी सामान्य जनों का राज्य होगा, यह उनका संकल्प था। रामराज्ययानि सब धर्मों के सत्यांशओं का राज्य रामराज्य यानि लोगों के आपस के स्नेहयुक्त सहकार्य का राज्य। रामराज्य यानि धर्मभेदों का राज्य। हरामराज्य यानि वर्ग भेड़ों का राज्य, जातिभेदों का राज्य। इन्सान में छिपी 'राम' की भावना को समाप्त कर उसके अन्तकरण में वास करने वाला 'राम' का हिन्द– गणराज्य के सिंहासन पर राज्यभिषेक की तीव्र आकांक्षा थी उनकी।[23] दादा की मान्यता थी कि आर्थिक पर संगठन करने से धर्मभेद और जातिभेद कि तीव्रता काफी कम हो जाएगी। लेकिन हमारे देश में वर्गविशिष्ट समाज और जातिविशिष्ट समाज में भेद होने के कारण वर्ग विग्रह का प्रारम्भ भी

सम्पन्न–जाति–विरोधी प्रतीकार से ही होने की सम्भावनाहै। इसलिए इस आन्दोलन का स्वरूप यहाँ द्विविध रहेगा। एक तो श्रमजीवी वर्ग का संगठन करना और दूसरा, जातिभेदों के निर्मूलन के लिए उपाय खोजना। इस तरह हिंदुस्तान को सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से सुसंगठित राष्ट्र बनाना भावी उत्कर्श और सामर्थ्य को बढ़ाने का सही मार्ग है।[24]

समाज परिवर्तन की प्रक्रिया केवल आर्थिक, राजकीय प्रक्रिया नहीं, मानस– शास्त्र की भी प्रक्रिया है। हमारा लक्ष्य है कि समाज– परिवर्तन की प्रक्रिया ऐसी हो, जिसमें प्रतिक्रान्ति पैदा न हो। जब तक समाज का ढांचा नहीं बदलता, तब तक क्रान्ति के प्रयोग पूरी तरह सफल नहीं हो सकते।[25] सामाजिकता का यह सूत्र है कि योग्यता और आवश्यकता के अनुरूप लोग देंगे और लेंगे। सबको कुछ मिल जाये तो विषमता नहीं होगी।[26] दादा वर्तमान राजनीतिज्ञों की दोहरी प्रवृत्तियों की आलोचना कराते हुए कहते हैं, कि एक ओर जात–पात का नाश करने की करारी प्रतिज्ञाएं हो रही है और दूसरी तरफ यह बतलाने की कोशिश हो रही है कि हमारी जाति की संख्या सबसे बड़ी है। भाषावादी अपने–अपने भाषा–भाषियों की संख्या अधिक से अधिक बतलाने की कोशिश कर रहे हैं। यह भी सत्ता के विभाजन की मनोवृत्ति का परिणाम है। हर एक जाति, संप्रदाय, भाषा अपनी संख्या बढ़ा– बढ़ा कर और फुला– फुला कर बतलाने की होड़ में उतरी है। क्या भारतवर्ष का जनतंत्र गुब्बारों की नुमाईश होगा? या इन राजनीति कुप्पों का प्रदर्शन होगा।[27] यह प्रवृति देश के अन्दर कम होने के बजाय दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, जो लोकतन्त्र के लिए अत्यंत ही अशुभ संकेत है।

दादा धर्माधिकारी गाँधी–विचार को आधार मानकर चिरंतन सत्य की प्राप्ति के लिए राजनैतिक ढांचे के अंतर्गत रहकर पुरुषार्थी एवं स्वावलम्बी समाज और राज्य की परिकल्पना में अनवरत प्रयत्नशील रहे।[28] दादा धर्माधिकारी सर्वोदय आधारित राजनीति व्यवस्था के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहे। क्योंकि सर्वोदय की राजनीति का आधार ही लोक– शक्ति है जो हिंसा– शक्ति और दंड– शक्ति से भिन्न है।[29] वे मार्क्स को दलित एवं पिछड़ी हुई मानवता का प्रथम मसीहा मानते हैं। उनका विचार है कि मार्क्स ही वह पहला दार्शनिक थे जिसने सम्पूर्ण विश्व की मानवता को संबोधित करते हुए कहा था कि ' दुनिया के मजदूरो, एक हो जाओ'। जहां तक हिंसा का सवाल है दादा मानते हैं कि मार्क्स के 'क्रान्ति दर्शन' में हिंसा का कहीं भी स्पष्ट से उल्लेख नहीं मिलता।[30]

दादा धर्माधिकारी की मान्यता है कि 'अहिंसा की क्रान्ति ही व्यवहारिक क्रान्ति हो सकती है।[31] मार्क्स ने स्वयं क्रान्ति नहीं की, परंतु क्रान्ति का एक विज्ञान, यह कला संसार को दी। इसमें तीन वैज्ञानिक उद्देश्य थे, जो इससे पहले संसार में किसी ने नहीं रखे थे। किसी दार्शनिक ने नहीं, किसी तत्वज्ञानी ने नहीं, किसी संत– महात्मा ने नहीं। मार्क्स ने पहली चीज यह कही कि दुनिया के इतिहास में एक दिन आएगा, जब गरीबी और अमीरी नहीं रहेगी। न जकात की जरूरत रहेगी और न चौरिटी का प्रयोजन। दान देने वाला भी नहीं रहेगा औए दान लेनेवाला भी नहीं रहेगा। जकात और दान अस्वस्थ मनोवृत्ति का लक्षण है। समाज में गरीबी और अमीरी सदैव रहेंगे और इन दोनों में सौहार्द्र रहेगा। इसे अंग्रेजी में 'क्लास कोलैबोरेशन' कहते हैं। यह वर्ग समन्वय

समानता के प्रतिकूल है।[32]

विनोबा जी के अनुसार, "अभी का समाज जो सामज है वह सर्वनाम की रचना है और वह पुरुषों ने अपनी बुद्धि से बनायी है। पुरुष आज तक भय पर ही सारी रचना करते आये हैं, अभय पर नहीं। समाज–व्यवस्था के लिए पुरुषों ने मर्यादा और स्वयं ही तोड़ भी डाली। सारी दुनिया को आग लगाना वे जानते हैं। इसी कारण दो महायुद्ध हो चुकी हैं और तीसरे का भय छाया हुआ है। इस स्थिति को सुधारने के रक्षण और नियंत्रण के अधिकार अपने हाथ मेन लेने चाहिए, तभी सर्वोदय होगा और ऐसे सर्वोदय मेन स्त्रियों का जो स्थान होगा, वह पुरुषों के स्थान से अधिक होगा और वही सामाजिक व्यवस्था सर्वोत्तम भी होगी।"33 "हिंदुस्तान की सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियॉं ने ही धर्म की रक्षा की है। सच पूछिये तो स्त्रियों ने ही सदाचार रखा है। स्त्रियों बच्चों को सच्चरित्र बनायेंगे तो देश को अच्छे नागरिक मिलेंगे।"[34]

दादा धर्माधिकारी स्त्रियों की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि, "पुराने जमाने में स्त्री की प्राय एक ही भूमिका हम सदा देखते हैं, कि जब किसी को मोह में डालना हो या तपस्वी को भ्रष्ट करना हो तो, बेचारी आ जाती है। जो पुरुष सबसे पराक्रमी हो, उसे देने की वस्तु सी होती थी? स्त्री। राजा बहुत खुश तो आधा राज्य दे दिया और अपनी कन्या दे दी। वह खरीदने की चीज थी, वह चुराने की चीज थी और छीनकर ले जाने की चीज थी। इसलिए वह बेचने की भी चीज थी। हमलोगों की अक्सर यह धारणा रही कि स्त्रियों के विषय में प्राचीन आदर्श ऊंचे थे। और बातों में वे रहे होंगे, लेकिन इतना मुझे नम्रतापूर्वक कह देना चाहिए कि स्त्री–सम्बन्धी सारे प्राचीन आदर्श स्त्रियों की मनुष्यता की हानी और अपमान करने वाले था। इसलिए उन आदर्शों के अनुसार आज का सहनागरिकता वाला समाज चल नहीं सकता। किसी धर्म में स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व कभी नहीं रहा। मेरी माँ कोई धार्मिक विधि कभी अकेले नहीं कर सकती। मेरे पिताजी की वह सहधर्मिणी है, अपने में वह मुख्य धर्मिणी नहीं है। पिताजी न हों, तो उसका अपना कोई धर्म नहीं है। पिताजी जो पुण्य करते हैं, उसका आधा पुण्य अपने आप उसे मिल जाता है। वह तो पाप करती है उसका आधा अपने आप पिताजी को लग जाता है। वह जो पुण्य करती है उसका आधा पिताजी को नहीं मिलता और पिताजी जो पाप करते हैं, उसका आधा उसको नहीं लगता। यह मर्यादा है। क्योंकि वह 'रक्षित' है और पिताजी 'रक्षक' हैं। स्त्री फलित है पुरुष पालक। इसलिए मुख्य धर्म, मुख्य कर्त्तव्य पुरुष का है, स्त्री केवल सहधर्मिणी है। वह सह–जीवनी है, उसका जीवन नहीं है। जैन और बौद्धों के कुछ प्रयासों को हम छोड़ दें तो आज तक की जो परम्परा और समाज–स्थिति है, उसमें स्त्री की भूमिका गौण और दोयम रही है। समाज ने उसे कभी व्यक्ति माना ही नहीं।"[35]

दादा धर्माधिकारी भारत को किसानों का देश मानते हुए कहते हैं की यह देश किसासों क देश है। हमने इसे कृषि–प्रधान देश कहा है। यह सिर्फ ऋषि और ऋषभ के बीच सिर्फ हल है। हल के आगे–आगे जो चलता है वह ऋषभ है। बैल है और पीछे–पीछे चलता है वह ऋषभ है। इस अर्थ मेन यह ऋषियों का और ऋषभों का भी देश है। यह गोपाल कृष्ण का देश है। यह हलधर बलराम का देश है। यह गौ चरानेवाले का देश है। यह हल चलाने वालों का देश है।

इसलिए इस देश में सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि जिनका संबंध भूमि से है। उनके हित की रक्षा भी सबसे पहले हो।

दादा धर्माधिकारी महात्मा गाँधी की ही भांति यंत्रीकरण के विरुद्ध हैं। वे कहते हैं कि एक तरफ आपने कहा कि यंत्रीकरण जितना होगा, उतना ही मनुष्य की बुद्धि का विकास होगा। दूसरी ओर यंत्रीकरण जितना बढ़ रहा है, उतना ही बुद्धि का कार्य कम हो रहा है। ऐसा अंतर्विरोध खड़ा होता है। दादा की दृष्टि में चरखा आर्थिक समानता का प्रतीक था। शरीर–श्रम की प्रतिष्ठा केवल आर्थिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृति मूल्य है। आज समाज में प्रतिष्ठा उसकी है, जो कम से कम शरीर–श्रम करता है, या जो बिल्कुल शरीर श्रम नहीं करता। दादा अपरिग्रह की वृत्ती पर आधारित अर्थशास्त्र की व्यूहरचना करना चाहते हैं। इस संबंध में वे कहते हैं कि संग्रह की मनोवृत्ति जब तक समाज में विद्यमान है तब तक दान और भीख रहेगा और चोरी भी रहेगी। जब संग्रह अपराध समझा जाएगा, सम्पत्ति के एकत्रीकरण को अपराध समझा जाएगा, तभी चोरी को अपराध करार देना उपयुक्त होगा। जब संग्रह को अपराध माना जाएगा, तब भीख भी नहीं रहेगी, दान भी नहीं रहेगा और चोरी भी नहीं रहेगी।

उपयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि दादा धर्माधिकारी एक ऐसी सामाजिक– राजनीति व्यवस्था के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहे जो गांधीवादी मूल्यों के अनुरूप हो। इसमें श्रम की प्रतिष्ठा, जाति–भेद एवं संप्रदाय भेद का निराकरण, स्त्री–पुरुष समानता होगी। वे वर्तमान राजनीति व्यवस्था एसआर भिन्न विकेंद्रित राजनीति व्यवस्था के पक्षधर थे, जिसे महात्मा गांधी ने 'ग्राम–स्वराज्य' अथवा 'रामराज्य' कहा है। दादा धर्माधिकारी वर्तमान खर्चीली और दंडशक्ति पर आधारित रजीनीति व्यवस्था के स्थान पर व्यापक लोकशक्ति पर आधारित राज्यव्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं। दादा धर्माधिकारी के सामाजिक– राजनीति विचार महात्मा गाँधी की ही भांति क्रान्तिकारी हैं। इन विचारों की आज प्रासांगिकता काफी बढ़ी हुई प्रतीत होती है। उनके विचार देश–समाज के लिए अत्यंत ही प्रासांगिक हैं। अत दादा के सामाजिक– राजनीति विचारों पर गंभीरतापूर्वक चिंतन– मंथन जरूरी है।

संदर्भ ग्रंथ

1. धर्माधिकारी, *दादाय गाँधी का उतराधिकारी जवाहरलाल*, सर्व सेवा संघ प्रकाषन,राजघाट, वाराणसी, पहला संस्कारण, जून 1966,पृ. **5**
2. प्रधान, ग.प्रय *'गाँधीः जीवनदृष्टि का महान भाष्यकार'* आलेख, सत्यनिष्ठ विचारयोगी, सम्पादक– रामप्रवेश शास्त्री, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, पहला संस्कारण, जून, 2007, पृ. **89.**
3. धर्माधिकारी, *दादाय दिशाबोधक दस्तावेज,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, पहला संस्करण, जून, 2002, पृ. **66.**
4. धर्माधिकारी, चन्द्रशेखरय लोकतन्त्र, *न्याय एवं राहों के अन्वेशी,* सर्व सेवा संघ प्रकाषन, राजघाट, वाराणसी, पहला, संस्करण,अगस्त,2008, पृ. **179.**
5. वही, पृ. **178.**

6. सिंह, रामजी, *सम्मतिय सर्वोदय का राजनीति–दर्शन,* लेखक– डॉ. जनार्दन पाण्डेय, जानकी प्रकाशन, पटना, प्रथम, संस्करण, 1986, पृ. 7
7. धर्माधिकारी, *दादाय सर्वोदय दर्शन,* पूर्वोक्त.पृ. 65
8. धर्माधिकारी, *चन्द्रशेखरय लोकतन्त्र,* न्याय एवं राहों के अन्वेशी, पूर्वोक्त, पृ. 5
9. धर्माधिकारी, *दादायय दिशाबोधक दस्तावेज,* पुवोंक्त, पृ. 99.
10. वही, पृ. 63.
11. धर्माधिकारी, दादायय मानवनिश्ठ भारतीय, पूर्वोक्त, पृ. 4
12. वही.
13. धर्माधिकारी, *चन्द्रशेखरय लोकतन्त्र,* न्याय एवं राहों के अन्वेशी, पूर्वोक्त, पृ.19.
14. वही, पृ. 20.
15. धर्माधिकारी, दादाय सर्वोदय दर्षन, पूर्वोक्त.पृ. 93–94.
16. वही, पृ. 102.
17. धर्माधिकारी, *चन्द्रशेखरय लोकतन्त्र,* न्याय एवं राहों के अन्वेशी, पूर्वोक्त, पृ. 35.
18. वही, पृ. 7.
19. वही, पृ. 17.
20. धर्माधिकारी, *दादाय दिशाबोधक दस्तावेज,* पुवोंक्त, पृ. 61.
21. वही, पृ. 23–24.
22. वही, पृ. 18.
23. वही, पृ. 16.
24. वही,पृ. 23–24.
25. धर्माधिकारी, *दादाय दादा की सूक्तियाँ,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, पहला, संस्करण, नवंबर, 1999, पृ. 39–40.
26. वही,पृ. 63.
27. धर्माधिकारी, दादाय गांधी की दृष्टि, पूर्वोक्त, पृ. 114–115.
28. डॉ. पाण्डेय, *जनार्दनय सर्वोदय का राजनीति–दर्शन,* पूर्वोक्त, पृ. 2.
29. सिंह, रामजीय सम्मति, *सर्वोदय का राजनीति–दर्शन,* ले– डॉ. जगनार्दन पाण्डेय, पूर्वोक्त, पृ. 7.
30. डॉ. पाण्डेय, *जनार्दनय सर्वोदय का राजनीति–दर्शन,* पूर्वोक्त, पृ. 2.
31. धर्माधिकारी, *दादाय दादा की सूक्तियाँ,* पूर्वोक्त, पृ. 22.
32. धर्माधिकारी, *दादाय समाज–परिवर्तन की प्रक्रिया,* पूर्वोक्त, पृ. 24.
33. विनोबाय *स्त्री–शक्ति,* सर्व सेवा संघ, वर्धा, 1976, पृ. 39.
34. विनोबाय कार्यकर्त्ता वर्ग, अ. भा. स. से. स., काशी,1995,पृ. 23.
35. धर्माधिकारी, *दादायक्रान्ति की प्रक्रिया,* पूर्वोक्त,पृ. 59–60.